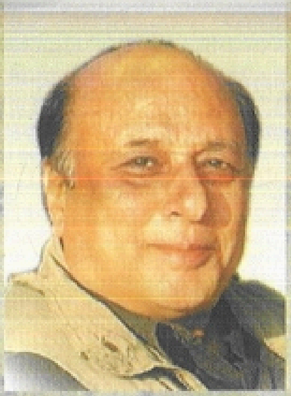

सृजनात्मकता के आयाम

उदय प्रकाश पर एकाग्र

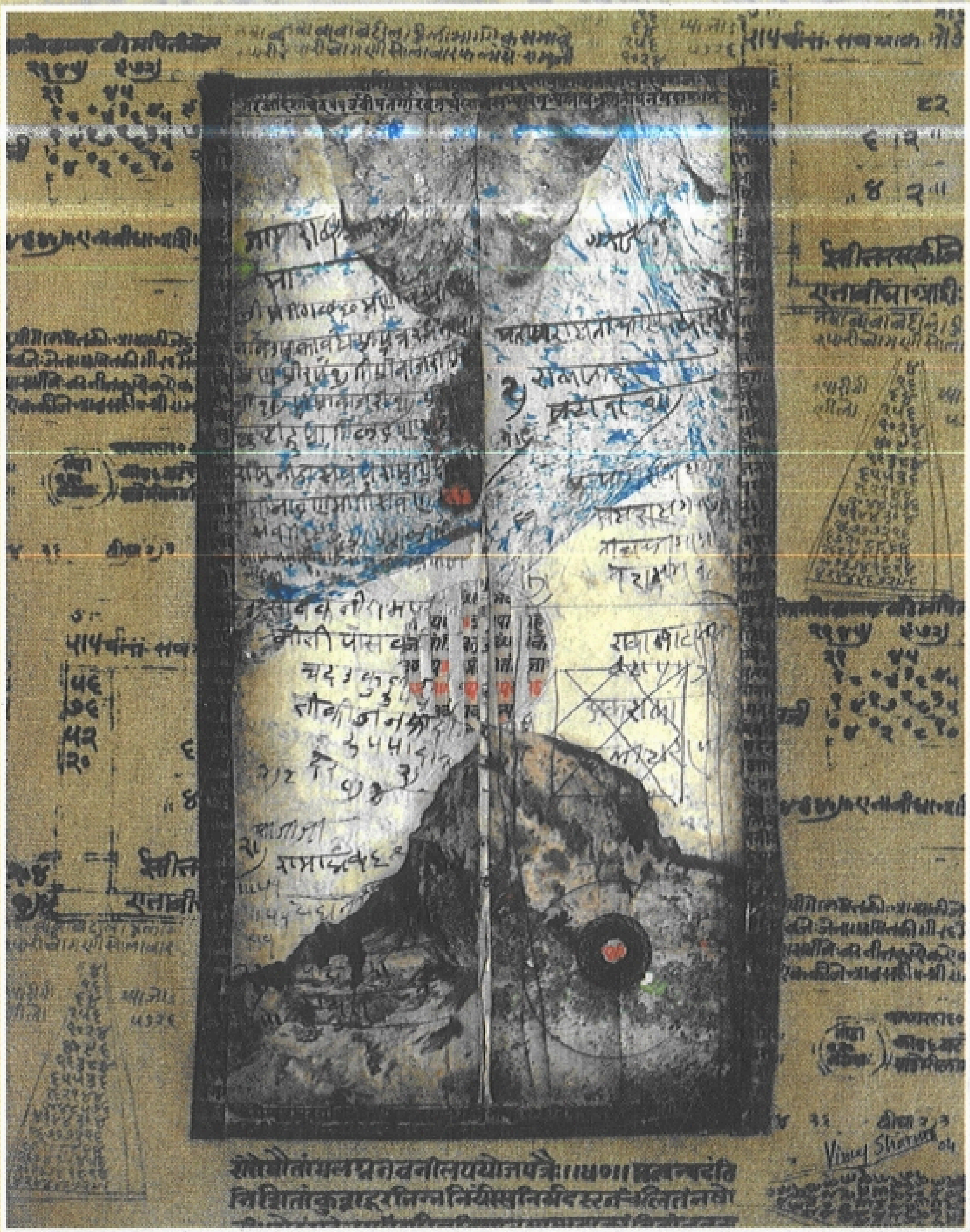

सम्पादक

ज्योतिष जोशी

यथार्थ का प्रतिपक्ष

रेखा सेठी

उदय प्रकाश की कहानियों में ऐसा क्या है जो बाँधता है.. बेचैन करता है.. जिसके अनेक पाठ किए जा सकते हैं.. जो अपने इतिहास और समाज को देखने की नयी दृष्टि देता है। उदय प्रकाश की कहानियों को समझने की कुँजी है अपने समय की सही पहचान। उस उत्तर-औपनिवेशिक दौर की पहचान जहाँ राजनीति ने सब कुछ अधिगृहीत कर लिया। भूमंडलीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया में 'सत्ता और पूँजी' के नये समीकरण बनने लगे। जहाँ बाहरी रंगीनियों के पार्श्व में बसे अँधेरे और गहरे होते गये। आम आदमी के लिए असुरक्षा, भय और लाचारी के सिवा कोई विकल्प न बचा। उदय प्रकाश अपनी कहानियों में अपने समय और अतीत की ऐसी व्याख्या करते हैं कि हमारा अपने समय से संवाद बनता है। सत्ता के विराट केनवेस के बरक्स हम अपनी और हर उस जन साधारण की कथा पढ़ने लगते हैं जो कितनी ही बार सत्ता और संस्था की ताकत के समक्ष खुद को विवश-बौना महसूस करता है। वह बार-बार उसमें टूटता-गिरता है लेकिन पूरी तरह हारता नहीं, हथियार नहीं डालता। वह किसी तरह अपनी भीतरी शक्ति इकट्ठा कर तमाम दबावों के बावजूद अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है, अपनी ज़मीन पर खड़ा रहता है- यह टकराहट उदय प्रकाश की लगभग सभी कहानियों में मौजूद है। इस अर्थ में ये कहानियाँ अलग-अलग न होकर एक ही कहानी हैं।

उदय प्रकाश का समस्त लेखन एक यात्रा है। अपने समय और समाज की यात्रा। वे खुली निगाहों से सामाजिक-राजनीतिक षड्यंत्रों के बीच आम आदमी की हाशियाकृत स्थिति को महसूस करतें है और उसे खुल कर कहने का साहस रखतें है। आज हम समय के जिस कठिन दौर से गुज़र रहे हैं, उससे हम सभी त्रस्त व आशंकित हैं लेकिन यह क्या कठिनाई है..समय का कैसा संकट..किसने रचा.. इसकी पड़ताल करना जोखि़म भरा है। उदय प्रकाश इस जोखिम को उठाते हैं। इसीलिए उनकी कहानियों में हिंसा, बर्बरता, यातना और करुणा के कई चेहरे

RSethi

हैं। हिंसा – विकास की प्रक्रिया में, वर्चस्व की स्थापना में, राजनीति में, स्त्री और दलित के शोषण में, क्लासेज़ और मासेज़ के विभाजन में। उनकी कहानियाँ अपने समय-समाज के विभिन्न बिन्दुओं को केन्द्र बनाती हैं।

उदय प्रकाश की कहानियाँ 'सबऑल्टर्न' अनुभव की कहानियाँ हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के पाठकों के विषय में लिखा है– ''.... मैं स्वयं और मेरी रचनाओं के ज़्यादातर पाठक, अपने समय, समाज और यथार्थ के हशिए के लोग हैं। समय और समाज की जो केन्द्रीय सत्ताएँ हैं, यानी इस व्यवस्था की जो धुरी है, उसकी परिधि और उसके भी बाहर के लोगबाग। एक तरह के 'सबऑल्टर्न' जीवन और अनुभव के लोग।'' इन कहानियों का लेखक और पाठक ही नहीं, ये कहानियाँ जिन लोगों की हैं वे भी हाशिए के लोग हैं जिन्हें सत्ता केन्द्रों ने परिधि के पार धकेल दिया है। उनके जीवन और अनुभव भी 'सबऑल्टर्न' अनुभव है जिसे वे निरंतर अपने यथार्थ से टकराते हुए अर्जित कर रहे हैं। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी की अंतिम पंक्तियाँ हैं:

> *जो प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं, / यथार्थ मिटा रहा है जिनका अस्तित्व / हो सके तो हम उनकी हत्या में न हों / शामिल / और संभव हो तो सँभालकर रख लें / उनके चित्र... / ये चित्र अतीत के स्मृति चिन्ह हैं.....*

ये पंक्तियाँ कवि पॉल गोमरा द्वारा लिखी गई हैं। इन पर तारीख है – 15 अगस्त, 1995 – उत्तर आधुनिक प्रवृतियों से गढ़ा जाता नया यथार्थ समय जो लगातार लोकतांत्रिक मूल्यों को धवस्त कर रहा है। इस यथार्थ को पॉल गोमरा जैसे कवियों साहित्यकारों ने नहीं रचा बल्कि यह यथार्थ ही बहुत-सी विचारधाराओं के अन्त की घोषणा करता हुआ उन्हें मिटाने में संलग्न है। उदय प्रकाश की प्रतिबद्ध इस नए बनते यथार्थ के प्रतिपक्ष में खड़ी होती है। वे यथार्थ द्वारा मिटाए जा रहे तमाम लोगों की कहानी कहना चाहते हैं।

अपनी सभी कहानियों में उनका ध्यान सामाजिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं पर केन्द्रित है। सामंतवाद, उपनिवेशवाद, स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक वर्चस्व और भूमंडलीकरण सभी व्यवस्थाओं का चरित्र जन-विरोधी है। कहीं-न-कहीं उनमें शोषण की क्रमिकता के सूत्र जुड़े हुए हैं। लेखक इन सामाजिक संरचनाओं के आंतरिक विरोधाभास को उभारता है। सामंतवाद से लेकर भूमंडलीकरण तक हिंसा और शोषण के चेहरे को बेनकाब करना; व्यवस्था के घटकों के बीच चल रही दुरभिसंधि को उजागर करना उदय प्रकाश की कहानियों को संचालित करने वाला संवेदनात्मक उद्देश्य है।

उत्तर औपनिवेशिक विरासत के शव को कंधों पर ढोने वाली भारतीय सामाजिक

व्यवस्था का सारा संकट राजनीति और नये अर्थतंत्र से पैदा होता है। अपनी हर कहानी में उदय प्रकाश इसी ढाँचे पर प्रहार करते हैं। वे अतीत की आँखों में आँखें डालकर देखते हैं और समय की नयी व्याख्या होने लगती है। उनकी कहानियों में काल कभी अतीत नहीं होता। अतीत को सुनने समझने की कोशिश, तार-तार खोलकर छिपी परतें उघाड़ने की कोशिश उसे जीवंत वर्तमान बनाती है। यही स्थिति वर्तमान की भी है। वर्तमान केवल आज और अभी का क्षण नहीं है। इस वर्तमान को गढ़ने वाली सामाजिक प्रक्रियाएँ निरंतर सक्रिय हैं। एक शिल्पी के बारीक छैनी हथौड़े की तरह ठक-ठक गढ़तीं, आकार देतीं, तराशती हुईं। लेखक की नज़र इन तमाम बारीकियों पर है। इसीलिए उनकी कहानियाँ अपने समय को समझने का उपक्रम हैं। वे काल से बँधी होकर भी कालातीत हैं उनके यहाँ अतीत और वर्तमान के बीच आवाजाही निरंतर बनी रहती है। अतीत और वर्तमान दोनों एक दूसरे के लिए संदर्भ बनते हैं। एक-दूसरे की रोशनी में पुनःपरिभाषित होते हैं। इतिहास यहाँ जीवंत हो उठता है और वर्तमान इतिहास से नयी अर्थवत्ता ग्रहण करता है।

'वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड़' कहानी अपने समय की व्याख्या औपनिवेशिक इतिहास के संदर्भ में ही करती है। इस कहानी में एक विराट कैनवेस पर अतीत और वर्तमान का संवाद बुना गया है। कहानी के आरंभिक हिस्से में ही एक नट लड़का भविष्यवाणी करता है-

''दो सौ साल के बाद जब अंग्रेज़ मालामाल होकर वापस अपने वतन इंग्लैंड लौटेंगे तब भी इंडिया में उनके जैसे ही नेटिवों का राज होगा। ...... उनके कपड़े, विचार, स्वप्न और आकांक्षाएँ अंग्रेज़ होंगी। वे हर इंडियन चीज़ से घृणा करेंगे। वे इंडिया को उससे भी ज़्यादा लूटेंगे, जितना विदेशी कंपनियों ने लूटा है। ...... विदेशियों ने वहाँ रहने वाले साधारण मानवों की जितनी हत्याएँ पाँच सौ सालों में नहीं की होंगी उससे ज़्यादा ये लोग सिर्फ़ पचास साल में कर डालेंगे।'' यह भविष्यवाणी स्वतंत्र भारत का अलिखित पाठ है जो दिन-प्रतिदिन अपनी पूरी प्रखरता के साथ प्रकट हो रहा है।

औपनिवेशिक भारत में अंग्रेज़ राज की जड़ें मज़बूत करने में जिन चापलूस सत्ताकामी भारतीयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, स्वतंत्रता के बाद भी वैसे ही अंग्रेज़ीदां किस्म के लोग सत्ता के केन्द्र में रहे। उनकी रीति-नीतियाँ सब ऐसी ही थीं जिनसे उन्हें या उन जैसे लोगों को ही स्वतंत्रता के लाभ मिले। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा का प्रश्न सामाजिक न्याय का बहुत बड़ा प्रश्न है। उदय प्रकाश अपनी कहानियों में विश्लेषित करते हैं कि कैसे अंग्रेज़ों से लेकर बाद तक शिक्षा और संपन्नता के अधिकार केवल सवर्ण जातियों तक ही सीमित रहे हैं। उत्तर

औपनिवेशिक समय में भी यही जातियाँ अपना साम्राज्य कायम रखे हुए हैं। एक नयी तरह के उपनिवेशवाद का जन्म हुआ है जहाँ मुट्ठी भर भारतीय देश के तमाम साधनों पर कब्ज़ा किए हुए हैं जबकि बाकी की गरीब जनता निरंतर बद से बदतर हालात को पहुँच रही हैं। इस शक्ति संपन्न वर्ग के समक्ष अपनी अस्मिता का कोई संकट नहीं हैं। वे अधिक-से-अधिक अंग्रेज़ और अमेरिकी होने में जुटे हैं-उनके जैसा खाते हैं, उनके जैसे कपड़े पहनते हैं, उनकी भाषा बोलते हैं। देश की तमाम संपत्ति और सत्ता पर उन्हीं का अधिकार है। यह उपनिवेशवाद की नयी नीति है जहाँ बिना राजीनतिक सत्ता हथियाये ही साम्राज्यवादी उद्देश्य पूर्ण हो रहे हैं। 'वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड' में लेखक ने एक जगह लिखा है-"हम जब इंडिया को छोड़कर यूरोप लौट जाएँगे, तब भी वहाँ हमारी यही गुलाम छायाएँ राज करेंगी। वह इंडिया में हमारा ही राज होगा।" यही नवसाम्राज्यवाद है, भूमंडलीकरण का उभरता चेहरा।

भूमंडलीकरण से उदय प्रकाश का खासा विरोध है क्योंकि अपनी तमाम चमक-दमक के बावजूद वह अन्तहीन लालसा को जन्म देता है। भूमंडलीकरण का मूल दर्शन भोगपरक है। पूंजी और तकनीक के दम पर पूरे विश्व में ऐसा जाल विकसित किया गया है जिससे विकासशील कहे जाने वाले देशों के शोषण को संस्थाबद्ध किया जा सके। अन्तराष्ट्रीय मुद्रा-कोष तथा विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाएँ इस नव उपनिवेशवाद की पैरोकार हैं। इस व्यवस्था के शीर्ष पर बैठा जो व्यक्ति सबकुछ नियंत्रित कर रहा है उसके लिए उदय प्रकाश ने बड़े व्यंजक विशेषण प्रयोग किए हैं- "खाऊ, तुंदियल, कामुक, लुच्चा, जालसाज़ और रईस, जिसकी सेवा की खातिर इस व्यवस्था और खासकर सरकार का निर्माण किया गया है।" (पीली छतरी वाली लड़की) तमाम लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के बीच इस आदमी ने सभी संस्थाओं का अधिग्रहण कर लिया है। विकासशील देशों के प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री उसकी जेब में हैं। वह दूर बैठा भी रिमोट कंट्रोल से सरकारें बनाता और गिराता है। यह चरित्र उदय प्रकाश की अन्य कहानियों 'पॉलगोमरा का स्कूटर', 'मोहनदास' तथा 'मैंगोसिल' में भी दिखाई पड़ता है।

चरम उपभोक्तावाद के इस दौर में बाज़ार का जादू सब पर पूरी तरह छाया हुआ है यहाँ तक कि आँख जो देखती है और दिमाग जो सोचता है उनके बीच की संगति बिल्कुल गड़बड़ा गई है। 'औरत बिकाऊ और मर्द कमाऊ का चकाचक युग है।' सब ओर भूख, लालच और हिंसा का साम्राज्य है। मीडिया एवं बाज़ार की ताकत से रचे जाते इस यथार्थ में लिप्सा और आक्रामकता के नये-नये समीकरण बन रहे हैं। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में उदय प्रकाश ने फैंटेसी के माधयम से उस विसंगत यथार्थ को उभारने की कोशिश की है। यह एक नया परिवेश है

जहाँ समाजवाद का पतन हो चुका है। समता और स्वतंत्रता की बात करने वाले सभी विचारों व सिद्धान्तों के अन्त की घोषणाएँ हो रही हैं। बड़े-बड़े अर्थशास्त्री मुक्त बाज़ार और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का विरुद-गान कर रहे हैं। ऐसे समय में उस आम आदमी के लिए क्या विकल्प बचे हैं जो प्रतिस्पर्धा की अपेक्षा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व में यकीन रखता है। अपने आस-पास फैली लालच, भ्रम, हिंसा और अपराध से भरी दुनिया में भी वह कवि होने के सपने पालता है पर तेज़ी से 'मालगोदाम' बनते इस समाज में उसका कोई मूल्य नहीं। "वे कुछ नहीं रह गये थे। न कवि, न नागरिक, न शायद ठीक-ठीक ढंग से मनुष्य ही।" 'पावरफुल मनीड पीपल' से अपनी लड़ाई में 'पुअर, सिंपल वीक हिन्दी पोएट' लड़ते-लड़ते विक्षिप्त हो जाता है- गाँधी, सुभाष के क्राँतिगीत गाता है, क्विट इंडिया की गुहार लगाता है लेकिन अन्ततः सड़क पर मृत पाया जाता है।

'मोहनदास' कहानी में लेखक की अन्वेषक निगाहें 'कैपिटल एवं पॉवर' (पूँजी और सत्ता) के ऐसे समीकरणों को उभारती हैं जो आम आदमी के जीवन को एक सिरे से मिटा डालने के लिए नित नये षड्यंत्र रच रही हैं; जिन्होंने हर सिद्धान्त, हर मानवीय आस्था को जड़ से निर्मूल कर दिया है। विकास की बाज़ारवादी नीतियों का खुलासा करते हुए वे लिखते हैं- "एक के बाद दूसरी सरकारों की वह आर्थिक नीति, जो देश के महानगरों को अमेरिका बना रही थी, वही देश के गाँवों और पिछड़े इलाकों को कंगाल बनाकर वहाँ असंख्य इथियोपिया, रवांडा और घाना पैदा कर रही थी।"

'मैंगोसिल' कहानी में भी लेखक ने भूमंडलीकरण के साथ विकसित हो रहे उन्नति और प्रगति के उस मॉडल को अस्वीकार किया है जो समाज में केवल एक ही वर्ग की संपन्नता व समृद्धि को पोषित करता है। उदय प्रकाश मानते हैं, यह एक सामाजिक प्रपंच है। शहरों के किनारे बसी गंदी बस्तियों के धूल-धुएँ में साँस लेते लोगों की किसी प्रशासन को कोई चिंता नहीं। इन लोगों को परिदृश्य से पूरी तरह अनुपस्थित रखने की कोशिश जारी है। इतिहास के अलग-अलग पड़ावों पर यह वर्गीय चेतना रूप बदलकर दमन और उत्पीड़न की नयी कहानियाँ रचती रही है। 'मैंगोसिल' में लेखक ने सूरी के माध्यम से टिप्पणी की है- "अंकल, अब तीसरी दुनिया नहीं है। दो ही दुनिया हैं और वो हर जगह है। एक दुनिया वह, जिसमें अन्याय करने वाले लोग रहते हैं, और दूसरी दुनिया वह जिसमें बाकी वह सारे लोग रहते हैं, जो अन्याय सहते हैं।" उदय प्रकाश अपनी तमाम कहानियों में सामाजिक विकास के इस अमानवीय ढाँचे को अस्वीकार करते हैं।

उदय प्रकाश की चिंता उत्तर औपनिवेशिक राजनीतिक ढाँचे को लेकर भी है जो अंग्रेज़ों की दमन-शोषणपरक नीतियों से स्वतंत्र नहीं हो पाया। स्वातंत्र्योत्तर

भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था के नाम पर केवल सत्ताकामी राजनीतिज्ञों, भ्रष्ट नौकरशाही तथा छल-बल से लैस गुंडों का तंत्र विकसित हुआ। 'और अन्त में प्रार्थना' इसी चिंता की अभिव्यक्ति है। डॉ. वाकणकर भारतीय मनीषा के द्वन्द्वपूर्ण संकट का प्रतीक हैं। क्षण-प्रतिक्षण इस नये उपजे लोकतंत्र का वासी भारतीय बुद्धिजीवी जन साधारण की अवहेलना देखकर स्तब्ध है। वह स्वयं को उस अनीतिपूर्ण व्यवस्था का हिस्सा महसूस करता है जहाँ प्रदूषित पानी से मरती जनता को बचाने के लिए प्रशासन एक जीप मुहैया नहीं कराता जबकि प्रधानमंत्री-दौरे की तैयारी के लिए रातों-रात सड़कें बनती हैं, रोशनियाँ की जाती हैं। प्रधानमंत्री की टोली भी उद्योगपतियों, बिचौलियों, तस्करों, आला अफसरों, हाकिम-हुक्कामों से बनी है। इस सबको देखकर ही वे प्रश्न करते हैं- "कहीं हमारे देश में लोकतंत्र का असली अर्थ जनता द्वारा अपनी शत्रु व्यवस्था का चुनाव तो नहीं है?" (और अन्त में प्रार्थना) किसी भी लोकतंत्र की कसौटी यही है कि वह अधिकांश जन समाज के लिए समता और स्वतंत्रता के अधिकार को कहाँ तक सुनिश्चित कर पाता है। उदय प्रकाश के लेखन में बार-बार यह जिज्ञासाएँ आकार लेती हैं कि यह कैसी सभ्यता है, कैसा विकास जहाँ स्वार्थी-भोगी मनुष्य ने ईश्वर और इतिहास दोनों को अपने पक्ष में मोड़ लिया है। लेखक अभी भी उस इतिहास के लिखे जाने का इंतज़ार कर रहा है जिसमें भारत के सभी प्रदेशों, सभी आम जनों की भागीदारी की सही तस्वीर उभरे। उत्तर-पूर्वी सीमांतों या सुदूर दक्षिण में बसे लोग अपने को पराया महसूस न करें। आदिवासियों को अपने जंगलों-ज़मीनों से बेदखल न होना पड़े।

यदि भारतीय लोकतंत्र में विकास के नाम पर होने वाले विस्थापन के आँकड़े देखें तो पता चलता है कि बड़े बाँध या विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने की सभी परियोजनाओं में जिन लोगों को विस्थापित होना पड़ा उनमें 79% जनसंख्या आदिवासियों की है। औद्योगद्धकरण और विकास के नाम पर जब भू-गर्भ में बसे आदिवासी इलाकों तक पहुँचने की कोशिश नये शोषण-चक्र को सक्रिय कर देती है। जिन संसाधनों पर शताब्दियों से आदिवासियों का एकाधिकार रहा, जिनके उपयोग से उन्होंने आत्मनिर्भर जीवन-शैली को अपनाया, सड़कों और फैक्टरियों ने उनसे यह भी छीन लिया। उदय प्रकाश के लिए ये सभी प्रश्न मानव अस्तित्व के प्रश्न हैं। वे लिखते हैं- "क्या इस तथाकथित औद्योगीकरण और विकास की कोई नस्लवादी परिभाषा नहीं हो सकती? ऐसे विकास से कौन-सी नस्लें मिटती हैं और किन नस्लों का इजाफा होता है।"

प्रकृति में विकास का क्रूरतम सिद्धांत, विकासवाद यानी सरवॉइवल ऑफ द फिटेस्ट का है। उसके बावजूद प्रकृति ने छोटे-छोटे कीट-पतंगे, तितलियाँ

बनाई। उन्हें जीवित रहने का अधिकार भी दिया तब मनुष्य जाति के विकास में कैसे अल्पविकसित जातियों को खत्म किया जा सकता है? उदय प्रकाश मानते हैं कि किसी भी देश और किसी भी व्यवस्था में किसी को यह हक नहीं है कि वह शोषण और उत्पीड़न के ऐसे अध्याय रचे जिससे ताकतवर के समक्ष साधन-शक्तिहीन मनुष्य का अस्तित्व ही संकट में आ जाए। आज बंगाल के नंदीग्राम, सिंगुर और ओड़िसा में चलने वाले आंदोलन इसी सच्चाई को उजागर कर रहे हैं। औद्योगीकरण तथा विकास को मुद्दा बनाकर एक बड़ी जनसंख्या को विस्थापित करने वाली व्यवस्था का कोई नैतिक आधार नहीं है। 'लोक' के विस्थापन और बर्बादी पर टिका लोकतंत्र किस जन के हित में है?

'और अन्त में प्रार्थना' कहानी में लेखक ने लोकतांत्रिक व्यवस्था के एक और महत्त्वपूर्ण, संवेदनशील एवं विवादस्पद प्रश्न को उठाया है- सत्ता और विचारधारा के सम्बन्ध को। हमारे यहाँ समाजवादी विचारधारा लम्बे समय से प्रगतिशीलता व आधुनिकता का पर्याय बनी रही। लेखक ने यहाँ उसके प्रतिपक्ष राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से सत्ता और विचारधारा के सम्बन्ध का पुन: परीक्षण किया है। महात्मा गाँधी की हत्या के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यानी आर.एस.एस. की बात करना भी पाप हो गया था। अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के समय भी इस विचारधारा की कट्टरता के प्रमाण मिले। इसके बावजूद उदय प्रकाश ने यहाँ विचारधारा के स्तर पर आर.एस.एस. की बात करने का साहस किया है। इस कहानी में डॉ. वाकणकर आर.आर.एस. के कार्यकर्त्ता हैं। वे जहाँ भी जाते हैं उन इलाकों में इसी संगठन के द्वारा समाज में पुनर्जागरण का प्रयत्न करते हैं। उनके व्यक्तित्व में विचारधारा के प्रति अंधश्रद्धा की जगह प्रश्नाकुलता दिखती है। वे अक्सर सोचते हैं कि बांग्लादेश बनने में मुसलमानों ने मुसलमानों के प्रति कितना अन्याय किया? हमारे देश में भी यदि कभी हिन्दू राष्ट्र बना तो वह किसका होगा व्यापारी, ठेकेदार और सवर्ण जातियों का या फिर उसमें पिछड़े समाजों की भी कोई जगह होगी? ऐसे प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश में छलावा ही हाथ लगता है।

विचाधाराओं का ढाँचा रूढ़ होता है। उसमें मानवीय संवेदना की गुंजाइश नहीं रहती। राजनीतिक पार्टियाँ अपने हित के लिए विचारधाराओं को भुनाने में संलग्न रहकर निरंतर व्यक्ति की निष्ठा पर आघात करती हैं। सबसे बड़ा संकट तब पैदा होता है जब विचारधारा में सत्ता का हस्तक्षेप होता है। सत्ता की राजनीति अलगाव की राजनीति है जो लोकतांत्रिक मूल्यों को कभी स्थिर नहीं कर पाएगी। यह घृणा की राजनीति है जो एक वर्ग-समुदाय को दूसरे के खिलाफ खड़ा करती है। इसका लक्ष्य धार्मिक-सामाजिक अस्मिताओं का ध्रुवीकरण है। विचारधारा में

सत्ता का हस्तक्षेप लोकतंत्र के लिए बड़ी त्रासदियों की रचना करता है। डॉ. वाकणकर का सामना भी इन परिस्थितियों से होता है जब सत्ता परिवर्तन के बाद वह पार्टी सत्ता में आती है जिसकी प्रेरणा एवं विकास में संघ की एक निश्चित भूमिका है। डॉ. वाकणकर ने वर्षों इस संगठन के माध्यम से परिवर्तन की कामना की थी लेकिन अब उस तंत्र में भी वह स्वयं को उसी द्वन्द्व और दुविधा में पाते हैं जो पहले थी। उनके जैसा मननशील व्यक्ति स्वीकार-अस्वीकार के बीच इस अनुभव से गुज़रता है कि मानवीयता विचारधारा से कहीं बड़ी है।

उदय प्रकाश की कहानियों का यह केन्द्रीय द्वन्द्व केवल मानसिक उद्वेलन या परिस्थिति एवं मन:स्थिति के सरल संघात से उत्पन्न द्वन्द्व नहीं है। इन सभी कहानियों का केन्द्र बिन्दु वह व्यक्ति है जो जटिल सामाजिक संरचनाओं व अन्त: सम्बन्धों की टकराहट में अपनी अस्मिता की पहचान पाना चाहता है। उनकी कहानियों में जितना महत्त्वपूर्ण अपने अस्तित्व या 'सरवाइवल' का प्रश्न है उतना ही महत्त्वपूर्ण अस्मिता या 'आइडेंटिटी' का सवाल भी है। विश्व साहित्य के परिदृश्य में भी अस्मिता मूलक संघर्षों के अधययन से नई सामाजिक समझ पैदा हुई है। इस संदर्भ में 'मोहनदास' कहानी विशेष उल्लेखनीय है।

'मोहनदास' कहानी में कबीरपंथी मोहनदास की लड़ाई 'अस्मिता और अस्तित्व' दोनों को बचाने की संघर्षगाथा है। इस कहानी का मोहनदास वह दलित युवक है जो अपने परिश्रम और विद्वता के बल पर बी.ए. के इम्तिहान में प्रथम श्रेणी में पास होता है। अखबारों में उसके फोटो छपते हैं। उसे अपनी एक पहचान मिलती है लेकिन कहानी के अन्त तक वह ऐसे क्रूरतम संघर्ष से गुज़रता है जहाँ वह चिल्ला-चिल्लाकर केवल एक ही बात कह रहा है "मैं मोहनदास नहीं हूँ।" ताकतवरों का समाज उसे जीने नहीं देता और लोकतांत्रिक व्यवस्था उसे बचाने या न्याय दिलाने में पूर्णत: असमर्थ है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में लम्बे समय से शिक्षा तथा रोज़गार के तमाम साधनों पर सवर्ण जातियों का कब्ज़ा रहा है। ऐसे में किसी भी दलित जाति के युवक का उनके वर्चस्व क्षेत्र को चुनौती देना उस व्यवस्था के लिए असह्य है।

मोहनदास को अपनी शिक्षा के बल पर मिलने वाली नौकरी के लिए प्रयत्न करते ही यह सच्चाई साफ दिखने लगती है कि सिफ़ारिश, रिश्वत, पार्टी और जाति के बिना नौकरी मिलना असंभव है। "स्कूल-कॉलेज के बाहर की असली ज़िन्दगी दरअसल खेल का ऐसा मैदान है जहाँ वही गोल बनाता है, जिसके पास दूसरे को लंगड़ी मारने की ताकत है।" यह कहानी छद्म-व्यक्तिकता (इंपरसोनिफिकेशन) से उत्पन्न मानवीय त्रासदी की कहानी है जहाँ सत्ता, संपत्ति और अधिकार की ताकत किसी के भी अस्तित्व को मिटाकर उसकी जगह उसके क्लोन खड़े कर

सकती है। मोहनदास इसी सच्चाई का शिकार है। जिस नौकरी के लिए मोहनदास को चुना जाता है उस पर वह सवर्ण व्यक्ति अधिकार कर लेता है जो सरपंच और पुलिस की सहायता से स्वयं को मोहनदास प्रमाणित कर सकता है। इस घटना को चुनकर उदय प्रकाश ने हिन्दी की पहली ऐसी कहानी लिखी है जिसमें एक व्यक्ति की अस्मिता का अपहरण कर लिया जाता है और उसके जीवन की विषमता इतनी विकट है कि यह अस्मिता का अपहरण उसके लिए अस्तित्व संकट बन जाता है।

'मोहनदास' जिस भय, असुरक्षा और अकेलेपन में जी रहा है उदय प्रकाश की कहानियों के सभी केन्द्रीय पात्रों की स्थिति यही है। डॉ. वाकणकर बार-बार सोचते हैं, 'मैं अकेला हो गया हूँ।' पॉल गोमरा भी अकेले हैं। क्यों अकेले हैं पॉल गोमरा और डॉ. वाकणकर क्योंकि वे अव्यावहारिक हैं या तेज़ गति से दौड़ते-बदलते समाज में वे स्वयं को 'मिस फिट' महसूस करते हैं। वे अपने सिद्धांतों और आस्थाओं पर टिके रहना चाहते हैं। वही उनके ज़िन्दा होने की शर्त है। कहानियों में इन पात्रों का अन्त बहुत आश्वस्त नहीं करता। फिर भी वे व्यवस्था के हाथों हारे हुए व्यक्ति नहीं हैं। उनकी पीड़ा एक कठिन समय में व्यवस्था के विद्रूप के बीच असंगत हो जाने की है। किन्हीं मायनों में तो वे व्यवस्था के घिनौने तंत्र के समक्ष अपनी रीढ़ सीधी रखने वाले साहसी योद्धा हैं। इन कहानियों में पात्रों का प्रसार डॉ. वाकणकर, पॉल गोमरा से लेकर शहर का त्रास झेलते पिता तक है। वहाँ कोरोनेशन पार्क के बाशिंदे हैं, जहाँगीरपुरी बादली की ज़िन्दगियाँ हैं। वहाँ 'भाई का सत्याग्रह' के भाई हैं, 'सहायक' कहानी के पिता हैं, 'हीरालाल का भूत' का हीरालाल है, 'छप्पन तोले का करधन' के दादा और दादी हैं जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी निष्ठा को टूटने नहीं दिया। उनका प्रतिशोध उनकी आंतरिक चेतना में रचा-बसा है। वे मानवीयता के विलक्षण चेहरे हैं।

उदय प्रकाश की कलम से रचे गए ये पात्र हिन्दी साहित्य के अविस्मरणीय पात्र हैं। लेखक ने अत्यंत मनोयोग से इन पात्रों की मानसिक बुनावट को उकेरा है। उनकी प्रायः सभी कहानियाँ लम्बी कहानियाँ हैं। उन कहानियों के विस्तार का कारण घटना बहुलता नहीं पात्रों की स्थितियों का विश्लेषण है। उनके अधिकांश पात्र गहरे आत्म-मंथन से गुज़रते हैं। जीवन और व्यक्तित्व-निर्माण के प्रसंगों को लेखक ने पूरे विस्तार से चित्रित किया है। इस सबके पीछे शायद लेखक का यह विश्वास है कि जिस स्वीकार-अस्वीकार, निर्णय-अनिर्णय की दुविधा से ये गुज़रते हैं वह एक क्षण में निर्मित नहीं होती। उसके पीछे व्यक्ति का अपना मनोविज्ञान है। उसके अनुभव और विचार हैं जिसे समय-समय पर अलग-अलग सामाजिक दर्शन व नैतिकता के सवाल गढ़ते रहे हैं।

उदय प्रकाश की लम्बी कहानियों से हटकर यदि छोटे-छोटे आत्मकथ्य सरीखी कहानियों को भी देखा जाए तो यह विलक्षणता वहाँ भी दिखाई पड़ती है। वे साधारण से किस्से को एक बड़े नैतिक सवाल में बदल देते हैं जहाँ व्यक्ति स्वयं को निर्णय-अनिर्णय की स्थिति के बीच घिरा हुआ महसूस करता है। 'अपराध' कहानी में लेखक ने ऐसे ही एक व्यक्तिगत प्रश्न को सामाजिक नैतिकता के प्रश्न में रूपांतरित कर दिया है। कहानी के केन्द्र में साधारण-सी घटना है जो सबके जीवन में कभी न कभी घटती है। छोटे भाई की झूठी शिकायत पर पिता द्वारा बड़े भाई की पिटाई होती है। छोटे भाई के मन में शिकायत करते हुए यह कल्पना नहीं थी कि उसके झूठ की यह प्रतिक्रिया हो सकती है। बड़े भाई बिना अपराध किए सज़ा पा रहे थे। उनकी बेगुनाही छोटे भाई के सच बोलने पर ही टिकी थी। उनकी आँखों में भय, त्रास, करुणा, लाचारी सब कुछ था। वे छोटे भाई से सच बोलने की भीख माँग रहे थे लेकिन छोटा भाई उस क्षण अपने भीतर वह नैतिक साहस नहीं पैदा कर सका जिससे वह परिस्थिति को सँभाल पाता। बरसों बाद भी उसे भाई की याचना भरी निगाहें पीड़ा पहुँचाती रहीं। उसके अपराध का बोध कराती रहीं लेकिन वर्षों बाद अब उस अपराध से मुक्ति उसके लिए संभव न रही।

यह स्थिति केवल व्यक्तिगत नहीं है। सामाजिक जीवन में भी स्थिति समान ही है। बरसों बाद ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर लगता है कि जीवन का कोई निर्णय केवल गलत ही नहीं अमानवीय एवं अन्यायपूर्ण था। लेकिन यह प्रश्न फिर भी बना रहता है कि 'क्या उसे बदला जा सकता है?' इस नैतिक संकट से मुक्त होना आसान नहीं। अतीत में जाकर उस निर्णय को बदला नहीं जा सकता इसलिए उससे जो स्थितियाँ पैदा होती हैं उन्हें लाचारी और विवशता में झेलना ही नियति बन जाता है। इन कहानियों में उदय प्रकाश एक ऐसे कहानीकार के रूप में सामने आते हैं जो किसी भी घटना को उसके साधारणत्व से मुक्त कर उसमें मानवीय संकट का बोध पैदा कर देते हैं।

उदय प्रकाश की कहानियों की विशिष्टता उनके मूल पाठ से अधिक उन अन्तर्धाराओं में है जो मूल कथा के समानांतर एक ऐतिहासिक सामाजिक पाठ रचती हैं। ये कहानियाँ सामाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से भी पढ़ी जा सकती हैं। अक्सर लेखक किसी पुस्तक के हवाले या ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के प्रमाण से अपनी बात की पुष्टि करता है। 'मोहनदास' कहानी के प्रारंभ में ही महात्मा ज्योतिराव फुले तथा आर्थर बोनर के उद्धरण दिए गए हैं, जिनमें स्पष्ट किया गया है कि कैसे अंग्रेज़ों के समय से ही शिक्षा और सत्ता का केन्द्र ब्राह्मण और सवर्ण जातियाँ ही रही हैं। 'वॉरेन हेस्टिंग्स का साँड' कहानी में भी विक्टोरिया मेमोरियल में टंगी पेंटिंग तथा लार्ड क्लाइव की टिप्पणी का हवाला दिया गया है। 'पीली

छतरी वाली लड़की' में भारतीयों पर लुटियन के विचारों का उद्धरण विलियम डार्लिंपल की पुस्तक 'सिटी ऑफ जिन्स' (जिन्नातों का शहर) से दिया गया है। इतना ही नहीं उनकी कहानियों के बीच-बीच में बहुत-से फलसफे, ज्ञान-विज्ञान के सिद्धांत आते हैं जिन्हें लेखक ने अपना मत दर्ज करते हुए साक्षियों की तरह इस्तेमाल किया है।

यह चिन्तन-मनन कहानी को कमज़ोर करता है या सशक्त इस पर अक्सर बहस होती रही है। एक विचार यह भी है कि कहानी के संवदेनात्मक उद्देश्य कथित न होकर व्यंजित होने चाहिए। वास्तव में, उदय प्रकाश अपनी रचनाओं में पूरे युग के इतिहास को जीवन्त करने की कोशिश करते हैं। युग का विश्लेषण और युग की परिणति के रूप में कल्पित स्थितियों व पात्रों का कथानुभव संश्लिष्ट भी है और समानांतर भी। अपने समय पर लिखी टिप्पणियाँ कहानी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं और उससे अलग भी हैं। कहानियों के कुछ हिस्से तो अपने समय की घटनाओं के रिपोर्ताज हैं। ऐसे सारे ब्यौरों का लेखक ने कहानियों में सर्जनात्मक प्रयोग किया है। इन कहानियों में लेखक की बहुविज्ञता साफ झलकती है। कहानी के छोटे-छोटे ब्यौरों में इतना कुछ समाया रहता है कि चकित करता है। उसमें इतिहास है, समाजशास्त्र है, राजनीति है, गणित व विज्ञान के सिद्धान्त हैं, संगीत एवं चित्रकला की मीमांसा है, विद्यापति, जयदेव तथा चैतन्य महाप्रभु हैं, साहित्य की गहरी समझ है। इस संश्लिष्ट ज्ञान के साथ जब लेखक कहानी लिखता है तब कहानी का एक-एक हिस्सा महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कभी-कभी लगता है कि ऐसे किस्से गढ़ने में लेखक को खुद मज़ा आने लगता है। वह उसमें पूरी तरह डूबकर उसमें तरह-तरह के नाटकीय मोड़ पैदा करता है और पाठक को पूरी तरह बाँधे रखता है।

उदय प्रकाश की कहानियाँ कथा की वाचिक परम्परा को पुनर्जीवित करती हैं। उनके यहाँ इतिहास और स्मृतियाँ एक-दूसरे में घुले-मिले हैं। 'वॉरैन हेस्टिंग्स का साँड' लिखते हुए उन्होंने लिखा था- 'जिसकी कथा होती है वह मरता नहीं' उदय जी भी ऐसी ही अविस्मरणीय कथाएँ रचने में लगे हैं। इन कहानियों के माध्यम से सभ्यता समीक्षा करना लेखक का मूल उद्देश्य है; घटनाएँ और पात्र तो निमित्त मात्र हैं।

मुक्तिबोध ने जब लम्बी कविताएँ लिखी थीं तो उसका कारण था यथार्थ की गतिशीलता- यथार्थ का वह रूप जो परत-दर-परत एक दूसरे के साथ लिपटा हुआ था। एक-एक पंक्ति में गुँथा हुआ। उदय प्रकाश की समस्या भी लगभग इसी तरह की है। वह एक कहानी में पूरे युग को समेटने की महत्त्वाकांक्षा रखते हैं। इसीलिए कहानियाँ अनिवार्यतः लम्बी हो जाती हैं। उदय प्रकाश की ये कहानियाँ

कहानी के निश्चित चौखटों में फिट नहीं होतीं। इन कहानियों ने कहानी विधा के बँधे-बँधाये अनुशासन को तोड़ा है। नई कहानी के दौर में निर्मल वर्मा ने एक टिप्पणी लिखी थी-"... जब हम 'नयी' कहानी की बात करते हैं, तो हमें कहानी की मृत्यु से चर्चा आरम्भ करनी चाहिए। हमें इससे मदद मिल सकती है- कहानी को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं- बल्कि उसे अन्तिम रूप से छोड़ने के लिए।" उदय प्रकाश की कहानियाँ अपनी तरह से कहानी के उस कहानीपन के अन्त की सूचक हैं लेकिन उसके बावजूद उसमें कथारस की सार्थक पुनर्व्यंजना हुई है। कथातंत्र का रहस्य-रोमांच, कौतुहल, फैंटेसी सब उनके यहाँ मौजूद है और उनके बीच कहानीकार कुशल किस्सागो की तरह कड़ी-से-कड़ी जोड़ता कहानी को आगे बढ़ाता पाठकों को अपना सहयात्री बनाकर आगे लिए चलता है।

नई कहानी कथानक से आगे बढ़ी। लेखकों ने बाह्य जगत की अपेक्षा पात्रां के अन्तर्जगत में झाँककर एक नयी कथासृष्टि उत्पन्न कर दी थी। उदय प्रकाश की कहानियाँ बाह्य जगत पर केन्द्रित हैं या अन्तर्जगत पर कहना कठिन है। पात्रों का आत्मिक विश्लेषण उनकी मानसिक बुनावट की कहानी कहता है। उनका अन्तर्जगत तरह-तरह की हलचलों से बैचेन है लेकिन इस आंतरिक संरचना का बहुलांश अपने बाह्य जीवन जगत की प्रतिक्रिया से ही उत्पन्न हुआ है। अपने परिवेश की सामाजिक-राजनीतिक समस्याएँ इन पात्रों के मन में ऐसा उद्वेलन पैदा करती हैं जिनका चरित्र मूलतः द्वन्द्वात्मक एवं प्रश्नाकुल है। यह बाह्य के आभ्यन्तरीकरण की प्रक्रिया है। कभी-कभी लगता है कि उदय प्रकाश के भीतर का कहानीकार एक बच्चे की तरह अपने पात्रों, परिस्थितियों, बिंबों, प्रतीकों, अभिव्यंजना के विभिन्न उपादानों से खेल रहा है। उनमें तरह-तरह की आवाज़ें उभरती हैं, दृश्य बनते हैं। उनकी कहानियाँ बिम्बधर्मी हैं। लम्बी-लम्बी कहानियाँ पढ़ने के बाद बहुत संभव है कि आप भूल जाएँ कहानी कहाँ शुरू हुई थी, कैसे आगे बढ़ी और किस अन्त तक पहुँची लेकिन कहानी के समर्थ बिम्ब अवश्य ऐसे रहेंगे जो आपकी चेतना पर छा जाएँगे। पाठक इन कहानियों को पढ़ने के बहुत समय बाद भी इन कहानियों की गिरफ़्त से छूट नहीं पाता।

उदय प्रकाश के पास अपने निजी प्रतीक भी हैं। ये प्रतीक अक्सर कहानियों में पात्रों के नामकरण में विचित्र ढंग से दिखाई पड़ते हैं। 'मोहनदास' कहानी में तो ऐसे प्रतीकों की कड़ी बन गई है। मुख्यपात्र है मोहनदास, पिता काबा, माँ पुतलीबाई, पत्नी कस्तूरी, पुत्र देवदास, पुत्री शारदा, गाँव का नाम पुरबनरा। कहानी में उसकी ओर से लड़ने वाले न्यायिक दंडाधिकारी जी.एम.मुक्तिबोध हैं, पब्लिक प्रॉसिक्यूटर एच.एस. परसाई, एस.एस.पी. शमशेर बहादुर सिंह- इन नामों के प्रतीकात्मक प्रयोग से ही लेखक ने मोहनदास की त्रासद-कथा को सक्रिय अहिंसा

की अनेक संघर्षगाथाओं से जोड़ दिया है। कहानी के अन्त में लेखक प्रश्न करता है-"लेकिन सच बताइए, मोहनदास के गाँव पुरबनरा का नाम क्या आपको पोरबंदर की याद नहीं दिलाता?" दिलाता है, बखूबी दिलाता है क्योंकि गाँधी, प्रेमचन्द, मुक्तिबोध, हरिशंकर परसाई, शमशेर बहादुर सिंह या डॉ. वाकणकर केवल व्यक्तियों के नाम नहीं आस्थाओं के नाम हैं। मूल्यों और प्रतिबद्धताओं के नाम हैं जिन्हें कोई मिटा नहीं सकता।

'छतरियाँ' कहानी याद करें तो उनके यहाँ स्त्री प्रकृति का प्रतीक है। उसकी ऐन्द्रीयता -आकर्षित करती है, रुमानियत भरती है, संवेदनशील बनाती है। अधिकांश कहानियों में जहाँ भी स्त्री का चित्रण हुआ है वह नरम रुई के फाहे जैसा अहसास ही है। उदय प्रकाश यह मानते हैं कि स्त्री के प्रति हिंसा पूरी प्रकृति के प्रति हिंसा है। नया अर्थतंत्र जिस भूखे राक्षसनुमा मनुष्य को पैदा कर रहा है वे सब स्त्री के प्रति संवेदनशीलता और प्रेम को खत्म किए दे रहें हैं। अन्य भोग के उपकरणों के ही समान स्त्री उनके भोग का निमित्त है। उसकी स्वतंत्र अस्मिता-इयत्ता का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं। प्रसंगवश, यहाँ एक और बात ध्यान में आती है। उदय प्रकाश ने अपनी कहानियों में समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति की संघर्षगाथा को अभिव्यक्ति दी है लेकिन उनकी कलम से अभी भी ऐसी कहानी आना बाकी है जिसमें स्त्री के बहुस्तरीय संघर्ष को वाणी मिले। एक स्वतंत्र देश की नागरिक के रूप में, एक व्यक्ति के रूप में उसकी पहचान हो। घर-बाहर के दो पाटों के बीच निरन्तर पिसती उसकी निजता की अलग पहचान बने।

बहरहाल, उदय प्रकाश की कहानियों का मूल ढाँचा अलग-अलग किस्सों, कथाओं, ध्वनियों और स्मृतियों से बनता है। हर हिस्सा अपने आप में पूरा होता है और अधूरा भी। अधूरापन उनकी कहानियों के अन्त जैसा ही है जो किसी निश्चित बिंदु तक नहीं पहुँचता। शायद उसकी आवश्यकता भी नहीं। मज़ेदार बात तो यह है कि अपनी बहुत-सी कहानियों में लेखक स्वयं दो-तीन अन्त सुझाता है जिनमें से हर एक उस कहानी को पूरा करने में सक्षम है लेकिन ये कहानियाँ इस तरह के किसी भी आरोपित अन्त की आकांक्षी नहीं।

अपनी लम्बी कहानियों को उपन्यास से अलगाते हुए उदय प्रकाश ने स्वयं 'पीली छतरी वाली लड़की' कहानी के सन्दर्भ में लिखा है- "लेकिन याद रखें यह लम्बी कहानी है, उपन्यास नहीं। इतने सारे पृष्ठों के बावजूद, इसमें से जो चीज़ अनुपस्थित है, वह है 'औपन्यासिकता' या 'एपिकैलिटी'। यह तो इसी समय और इसी यथार्थ में अभी भी जिये जा रहे जीवन का एक ब्यौरा भर है। एक अनिर्णीत आख्यान का एक टुकड़ा।"

उदय प्रकाश की सिद्धहस्तता इन ब्यौरों में ही है। उनके पास वर्णन करने वाली अद्‌भुत भाषा है। वे छोटे-से-छोटे भाव, घटना का सटीक वर्णन कर सकते हैं और जो तत्त्व इस वर्णन को अद्‌भुत बनाता है वह है उसका वर्तुल आकार। लेखक एक बात कहना शुरू करता है। घटना का वर्णन करता है। मन पर पड़ी प्रतिक्रिया की टोह लेता है और फिर घूमकर उसी बिन्दु पर आ जाता है। कथा के सूत्र जुड़ जाते हैं। एक संवेदनात्मक उद्देश्य पूरी कहानी को एक बिन्दु पर तान देता है। यहाँ कथा और आख्यान का एक दूसरे में विलय हो जाता है। कहानी की नयी समझ पैदा होती है। खतरे उठाकर पाए गए अनुभव और अभिव्यक्ति को एक नयी दिशा मिलती है जो आने वाले वर्षों में लम्बे समय तक अपना सानी आप ही रहेगी। यही उदय प्रकाश की कहानी कला की बहुत सार्थक उपलब्धि भी है।

अपने एक लेख में मैंने उदय प्रकाश की तुलना मुक्तिबोध से की थी। मुक्तिबोध ने साहित्य के विषयों और फार्म के कड़े रेजिमेंटेशनस् को चुनौती देते हुए अपनी प्रतिबद्धता के स्तर पर नए प्रतिमान रचे थे। उदय प्रकाश की कहानियों में भी यह दोनों बातें एक-साथ दिखाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध की ही तरह उदय प्रकाश भी अपने समय के विसंगत यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए 'टाइम और स्पेस' की बाह्य सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। उनका रचना संसार यथार्थ और कल्पना का ऐसा विन्यास बन जाता है जिसमें समय-स्थितियों, पात्र-घटनाओं का ताना-बाना बुनते हुए लेखक स्वयं अपनी सजग उपस्थिति दर्ज करता है। वह कथा के भीतर-बाहर सब तरफ मौजूद रहता है- व्यंग्य, उपहास और वितृष्णा भरे स्वर में सभ्यता समीक्षा करता, सवाल उठाता और एक ज़िद की तरह मानवीयता के पक्ष में अडिग होकर खड़ा होता।